CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी अनुवाद

संस्कृत सामायिकपाठ

(पं० महाचन्दजीकृत भाषा सामायिकपाठ सहित)

सं. 367

2543

रचयिता
पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य

श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

Trust/eGangotri

वर्ग संख्या..... प्राप्ति-संख्या.....

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम संस्कृत सामायिक पाठ

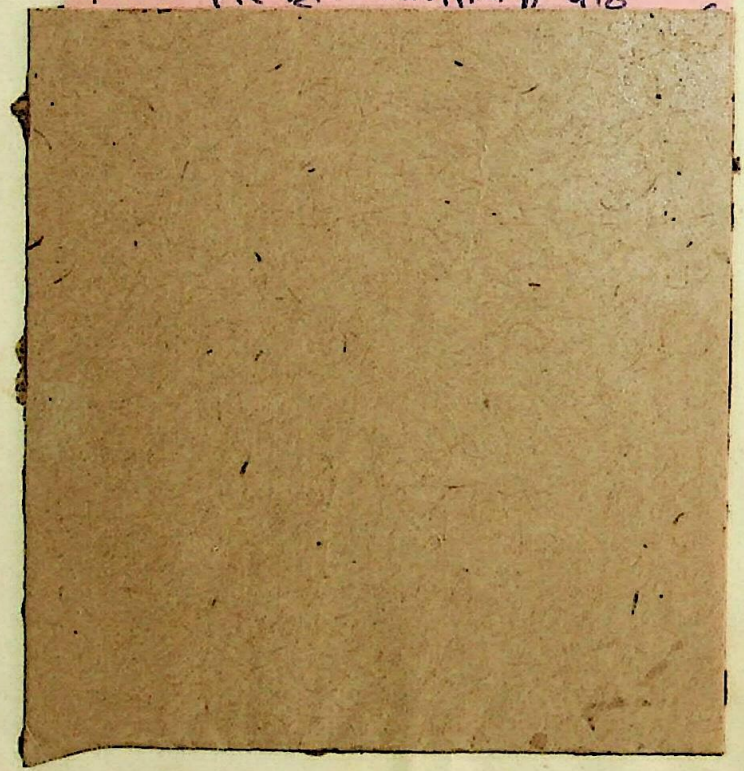

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी अनुवाद युक्त

संस्कृत सामायिकपाठ

(पं० महाचन्दजीकृत भाषा सामायिकपाठ सहित)

रचयिता

पं० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य

साहित्याध्यापक

श्रीगणेश संस्कृत जैन महाविद्यालय, सागर

प्रकाशक

श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

सम्पादक और नियामक

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

दरबारीलाल कोठिया

प्रकाशक

मंत्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला,

१।१२८, डुमरावबाग-वसति

अस्सी, वाराणसी–५

प्रति १०००

फाल्गुन शुक्ला २, वीर नि० सं० २४९३

मार्च १९६७

मूल्य : ०–६० पैसे

मुद्रक

बाबूलाल जैन फागुल्ल

महावीर प्रेस

बी० २०/४४, भेलूपुर, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

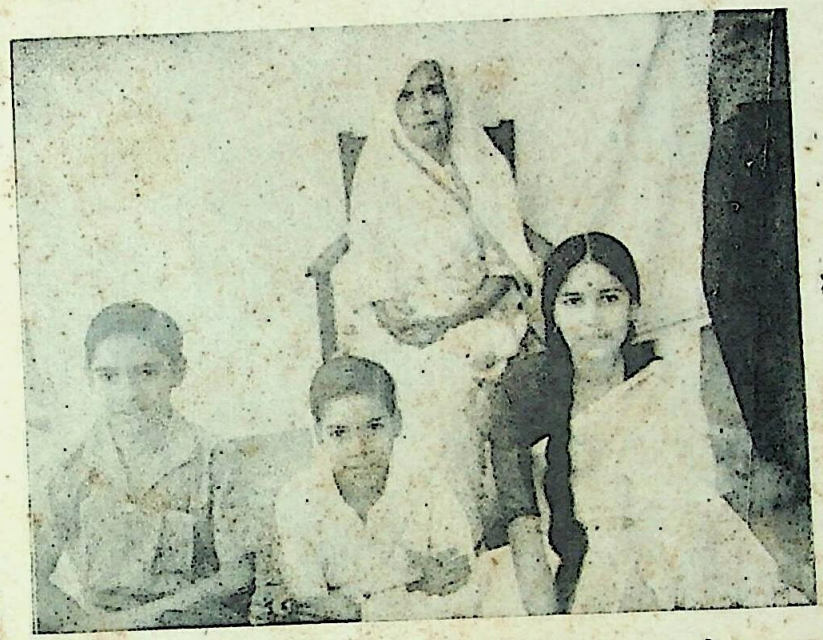

श्रीमती धर्मनिष्ठा सिंघैन चम्पाबाईजी (मातेश्वरी सिं० जीवनकुमार जैन) सागर
अपने युगल पोतों (चि० अरुणकुमार व चि० वीरेन्द्रकुमार) और पोती
आयुष्मती सन्तोषकुमारी बी. ए. (द्वितीय वर्ष) के साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागर (म० प्र०) के प्रसिद्ध गल्लेके व्यापारी और दानी, जाति-भूषण सि० कुन्दलालजी एवं सि० रज्जीलालजीके लघुभ्राता सि० नाथू-रामजी सागरकी आप धर्मपत्नी और श्री खुशालचन्द्रजी पटोरिया छिन्द-वाड़ाकी ज्येष्ठ पुत्री हैं। आप आरम्भसे धर्मपरायणा, उदारहृदया, विद्वानों एवं त्यागी-मुनियोंकी परमभक्ता तथा आतिथ्यशीला हैं। पूज्य वर्णीजीकी तो आप विशेष श्रद्धालु हैं। महिला-जागरणमें आपने बड़ा कार्य किया है। महिलाओंमें शिक्षा-प्रचार और शास्त्र-सभाओंको प्रोत्साहन देना तथा उसमें सक्रिय भाग लेना आपके जीवनका उल्लेखनीय लक्ष्य रहा है। शास्त्र-सभाके अन्तमें मधुर कोकिलकण्ठसे आध्यात्मिक भजनोंको बोलकर श्रोताओंको प्रमुदित करना और उनकी प्रशंसा प्राप्त करना आपका अद्वि-तीय गुण है। वर्तमानमें आपके शरीरपर दो बार लकवाका आघात होने और उससे असह्य कष्ट सहनेपर भी आप धर्मकार्यों (देवदर्शन-पूजनादि) में पूर्ववत् प्रवृत्त हैं। आप गल्लेके यशस्वी व्यापारी और समाज-सेवी सि० जीवनकुमारजीकी मातेश्वरी हैं। प्रस्तुत सामायिकपाठ (सानुवाद) आपके उदार द्रव्यसे ही प्रकाशित हो रहा है। इसके लिए वर्णी ग्रन्थमाला आपकी आभारी है। आप स्वस्थ एवं दीर्घायु हों, यही कामना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला अप्रैल १९६६ में जैनदर्शनका द्वितीय संस्करण, अगस्त १९६६ में द्रव्यसंग्रह-भाषा-वचनिका और जनवरी १९६७ में मेरी जीवनगाथा प्रथम भागका तृतीय संस्करण ये तीन ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है। चतुर्थ ग्रन्थ वर्णीवाणी तृतीय भागका चतुर्थ संस्करण भी इसी मार्च १९६७ के अन्ततक छपकर पाठकोंके हाथोंमें पहुँच जावेगा। हमें प्रसन्नता है कि ग्रन्थमाला अपने सीमित आर्थिक साधनोंसे इतने अल्प समय (मात्र एक वर्ष) में चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रकाशन कर सकी है।

आज एक रचना और पाठकोंके करकमलोंमें जा रही है। यद्यपि यह लघुकाय रचना है फिर भी विषयकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है और ग्रन्थमालाके उक्त क्रममें उसे रखा जा सकता है। वह है हिन्दी अनुवाद सहित संस्कृत-सामायिकपाठ। इसके रचयिता एवं अनुवादक समाजके सुपरिचित और बहुश्रुत विद्वान् पण्डित पन्नालालजो वसन्त साहित्याचार्य हैं। मूल संस्कृत-सामायिकपाठ इसी ग्रन्थमालामें सितम्बर १९६६ में प्रकाशित हो चुका है। इसकी रचना रचयिताने २९ वर्ष पूर्व की थी और उसे 'अनेकान्त' में प्रकट किया था। यह विविध मनोहारि छन्दों (इन्द्रवज्रा, उपजाति, अनुष्टुप्, आर्या, शालिनो, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित और रथोद्धता) में रचित है। हिन्दी अनुवाद हो जानेसे अब यह सर्वजनोंके लिए उपयोगी हो गई है। आचार्य अमितगतिके लघु और बृहद् दोनों सामायिकपाठ, जो संस्कृतमें निबद्ध हैं, बहुप्रचलित हैं और बड़े सरल तथा भावपूर्ण हैं। वसन्तजीकी यह रचना भी अत्यन्त हृदयग्राही एवं सरस है। विश्वास है कि यह विद्वानों, त्यागियों और सद्गृहस्थों द्वारा अवश्य आदृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगी। इस सुन्दर रचनाको प्रस्तुत करनेके लिए हम वसन्तजीको धन्यवाद देते हैं।

इसके प्रकाशनका व्यय परमधार्मिका, आतिथ्यशीला और उदारहृदया श्रीमती सिंघैन चम्पाबाईजी (मातेश्वरी सिंघई जीवनकुमारजी जैन) सागरने प्रदान किया है। अतः उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद है।

फाल्गुन शुक्ला २,
वीर नि० सं० २४९३
१३ मार्च १९६७

मंत्री
श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्य निवेदन

समताभाव आत्माका स्वभाव है, उसका निरन्तर सद्भाव रहना आत्माकेलिये श्रेयस्कर है। परन्तु अनादिकालसे संलग्न कर्मोदयके कारण साम्यभावका सदा सद्भाव रहना कठिन कार्य है। अतः मुनि और श्रावक दोनोंके लिए यह आवश्यक कार्य विहित किया गया है कि सदा नहीं तो दिनमें दो या तीन बार अवश्य ही साम्यभाव धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिए। उनका यह प्रयत्न ही सामायिक है। सामायिकके प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक, स्तुति, वन्दना और कायोत्सर्ग ये छह अङ्ग हैं। लगे हुए दोषोंपर पश्चात्ताप प्रकट करना प्रतिक्रमण है, आगामी कालमें वैसा दोष पुनः न लगानेका विचार आना प्रत्याख्यान है, सब जीवोंपर समता भाव धारण करना सामायिक है, चौबीसों तीर्थंकरों-की स्तुति करना स्तुति है, किसी एक तीर्थंकरकी स्तुति करना वन्दना है और निश्चित अवधि तक शरीरसे ममत्वभाव छोड़ कर स्थित रहना सो कायोत्सर्ग है।

इस सामायिकपाठमें उक्त छहों कर्मोंको पृथक्-पृथक् विधि बतलाई गई है। अर्थ समझते हुए इस सामायिकपाठका पाठ करनेसे आत्म-परिणामोंमें विशेष निर्मलता आती है। यद्यपि पाठ कुछ बड़ा हो गया है पर प्रत्येक मनुष्यको कम-से-कम २ घड़ी अर्थात् ४८ मिनटका सामायिक तो करना ही चाहिये। इसी उद्देश्यसे रचना कुछ विस्तृत की गई है। चारों दिशाओंमें बतलाये हुए कृतिकर्मको करनेके बाद पञ्चनमस्कार मन्त्रकी आर्याछन्दके अनुसार धीरे-धीरे जाप करने और इस सामायिक पाठको पढ़नेमें ४८ मिनटका समय पूरा हो जाता है। यदि किसीका कुछ समय शेष रहे तो उसमें बारह भावना, षोड़शकारण भावना, पाँच-व्रतों की पच्चीस भावना, सात तत्त्व, गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास, बन्ध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिभङ्गी, उदयत्रिभङ्गी, सत्वत्रिभङ्गी, तथा चौबीसठाणा आदि का चिन्तवन कर ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ध्यानके अभ्यासके लिये स्वाध्यायके द्वारा अपने ज्ञानको परिपक्व बनाना चाहिये। सामायिक को बड़े उल्लासके साथ करना चाहिये, उसे भार समझ कर नहीं करना चाहिये।

पहले इस सामायिकपाठका मूलमात्र प्रकाशन किया गया था। पाठकोंकी प्रेरणासे अब वह हिन्दी अनुवादके साथ प्रकट हो रहा है।

इसकी रचना श्री कविवर महाचन्द्रजीके 'काल अनन्त भ्रम्यो जगमाँहि' इस सामायिक पाठके आधारपर विकसित हुई। इसलिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही हम श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला काशीके भी आभारी हैं, जिसके द्वारा यह प्रकाशित हो रहा है। त्रुटियोंके लिये विद्वानोंसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

सागर
आश्विन कृष्ण १४, वीरनिर्वाण २४९२

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिकपाठ

[१]

प्रतिक्रमणकर्म

[1]कालादनन्ताद्भ्रमता समन्ताद्
दुःखातिभारं भरता भवेऽस्मिन् ।
सौभाग्यभागोदयतो मयैतत्
सामायिकं सौख्यकरं सुलब्धम् ॥१॥

हे भगवन् ! अनन्तकालसे इस संसारमें सब ओर—चारों गतियोंमें भ्रमण करते और बहुत भारी दुःखको उठाते हुए मैंने कुछ सौभाग्यके उदयसे यह सुखदायक सामायिक प्राप्त किया है ॥१॥

सर्वज्ञ ! सर्वत्र विरोधशून्य !
चञ्चद्दयासागर ! हे जिनेन्द्र !
कायेन वाचा मनसा मया यत्
पापं कृतं दत्तजनातितापम् ॥२॥

हे सर्वज्ञ ! हे सब जगह विरोधसे रहित ! हे लहराते हुए दयाके सागर ! हे जिनेन्द्र ! मैंने काय, वचन और मनसे मनुष्योंको अत्यन्त दुःख देने वाला जो पाप किया है

---

१ इन्द्रवज्रा, उपजाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूत्वा पुरस्ताद्भवतो विनीतः
सर्वं तदेतन्निगदामि नाथ ।
कारुण्यबुद्ध्या सुभृतो भवांश्च
मिथ्या तदंहो विदधातु धातः ॥३॥(युग्मम्)

हे नाथ ! आपके आगे विनीत भावसे खड़ा होकर मैं वह सब पाप कहता हूँ और दयाबुद्धिसे भरे हुए हे विधातः ! आप उसे मिथ्या करें ॥२॥

क्रोधेन मानेन मदेन माया-
भावेन लोभेन मनोभवेन ।
मोहेन मात्सर्यकलापकेना-
शर्मप्रदं कर्म कृतं सदा हा ॥४॥

हाय, मैंने क्रोधसे, मानसे, मदसे, मायाचारसे, लोभसे, कामसे, मोहसे और मात्सर्यके समूहसे सदा दुःख देने वाला कार्य किया ॥४॥

प्रमादमाद्यन्मनसा मयैते
द्व्येकेन्द्रियाद्या भविनो भ्रमन्तः ।
निपीडिता हन्त विरोधिताश्च
संरोधिताः क्वापि निमीलिताश्च ॥५॥

खेद है कि मैंने प्रमादसे उन्मत्त चित्त होकर भ्रमण करते हुए इन एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, आदि जीवोंको कहीं निपीड़ित किया, विरोधित किया, उनकी स्वतन्त्र गतिको रोका और उन्हें निमीलित किया—पैर आदिसे दबाया ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाल्ये मया बोधसमुज्झितेन
कुज्ञानचेष्टानिरतेन नूनम् ।
अभक्ष्यसंभक्षणादिकं हा
पापं विचित्रं रचितं न किं किम् ॥६॥

खेद है कि मैंने बाल्य अवस्थामें सम्यग्ज्ञानसे रहित और मिथ्याज्ञानकी चेष्टामें लीन होकर अभक्ष्यभक्षण आदि कौन-कौनसे विचित्र पाप नहीं किये हैं ॥६॥

तारुण्यभावे कमनीयकान्ता-
कण्ठाग्रहाश्लेषसमुद्भवेन ।
स्तोकेन मोदेन विलोभितेन
कृतानि पापानि बहूनि हन्त ॥७॥

खेद है कि तरुण अवस्थामें मैंने सुन्दर स्त्रियोंके कण्ठालिङ्गन से उत्पन्न होनेवाले थोड़ेसे सुखसे लुभाकर बहुत पाप किये हैं ॥७॥

बाला युवानो विधवाश्च भार्या
जरच्छरीराः सरलाः पुमांसः ।
स्वार्थस्य सिद्धौ निरतेन नित्यं
प्रतारिता हन्त मया प्रमोदात् ॥८॥

खेद है कि स्वार्थकी सिद्धिमें लीन होकर मैंने बालकों, तरुणों, विधवा स्त्रियों, वृद्ध मनुष्यों और भोले पुरुषोंको बड़ी प्रसन्नतासे निरन्तर ठगा है ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्यादिकार्येषु सदाभिरक्त
आरम्भवाणिज्यसमूहसक्तः ।
विवेकवार्तानिचयेन मुक्त-
श्चकार पापं किमहं न चित्रम् ॥९॥

खेती आदिके कार्योंमें सदा लीन तथा आरम्भ और व्यापारों के समूहमें आसक्त रहनेवाले मैंने विवेकपूर्ण बातोंसे रहित होकर कौन-कौन-सा विचित्र पाप नहीं किया है ? ॥९॥

न्यायालये हन्त विनिर्णयार्थं
गतेन हा हन्त मया प्रमोहात् ।
चित्रोक्तिचातुर्यचितेन चारु-
सत्यस्य कण्ठो मृदितः सदैव ॥१०॥

बड़े दुःखकी बात है कि मैं न्यायके लिये न्यायालयमें गया तो वहाँ भी मैंने बहुतभारी अज्ञानके कारण नाना प्रकारकी वचन सम्बन्धी चतुराईसे युक्त होकर सदा उत्तम सत्यका गला घोंटा है ॥१०॥

व्यापाद्य लोकान् रहसि प्रसुप्तान्
लोभाभिभूतो दयया व्यतीतः ।
जीवस्य जीवोपमवित्तजातं
जहार हा हारि सुहारमुख्यम् ॥११॥

खेद है कि मैंने लोभके वशीभूत हो दयासे रहित होकर एकान्त स्थानमें सोये हुये हुए लोगोंको मारकर उनके प्राणतुल्य हार आदि सुन्दरमू धनके सहका अपहरण किया ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लावण्यलीलाविजितेन्द्रभार्या
भार्याः परेषां सहसा विलोक्य ।
वसन्तहेमन्तमुखर्तुमध्ये
कदर्पचेष्टाकुलितो बभूव ॥१२॥

दुःख है कि मैं सौन्दर्यसे इन्द्राणियोंको जीतने वाली दूसरोंकी स्त्रियोंको देख वसन्त, हेमन्तआदि ऋतुओंमें सहसा काम-विकार-की चेष्टासे आकुलित हुआ हूँ ॥१२॥

लोभानिलोत्कीलितधैर्यकीलः
कार्पण्यपण्यीयनिकेतनाभः ।
सङ्गाभिषङ्गे प्रविषक्तचित्त-
श्चकार चित्राणि न चेष्टितानि ॥१३॥

लोभरूपी वायुसे जिसकी धैर्यरूपी कील उखाड़ दी गई है ऐसे तथा कृपणताके स्थानस्वरूप मैंने परिग्रहकी आसक्तिमें लीन चित्त होकर कौन-कौन-सी चेष्टाएं नहीं की हैं ? ॥१३॥

पापेन पापं वचनीयरूपं
मया कृतं यज्जनताप्रभो ! तत् ।
वाचा न वाच्यं मयका कथञ्चित्
समस्तवेदी तु भवान् विवेद ॥१४॥

हे जननाथ ! मुझ पापीने जो निन्दनीय पाप किया है उसे मैं वचनद्वारा किसी तरह नहीं कह सकता, परन्तु आप सर्वज्ञ-हैं, अतः सब जानते हैं ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वयाञ्जनाद्या विहिता अपायाः
संप्रापिताः सौख्यसुधासमूहम् ।
ममापि तत्पापचयः समस्तो
ध्वस्तः सदा स्याद्भवतः प्रसादात् ॥१५॥

हे भगवन् ! आपने अञ्जन आदि अधम प्राणियोंको पाप-रहित कर सौख्यरूप अमृतके समूहको प्राप्त कराया है, इसलिये आपके प्रसादसे मेरा भी वह पापोंका समूह सदाके लिये नष्ट हो जावे ॥१५॥

ममास्ति दोषस्य कृतिः स्वभावो
भवत्स्वभावस्तु तदीयनाशः ।
यद्यस्य कार्यं स करोतु तत्तत्
न वार्यते कस्यचन स्वभावः ॥१६॥

हे भगवन् ! दोष करना मेरा स्वभाव है और उन दोषोंको नष्ट करना आपका स्वभाव है; इसलिये जिसका जो कार्य है वह उसे करे; क्योंकि किसीका स्वभाव नष्ट नहीं किया जा सकता ॥१६॥

पठञ्श्लोकततिं ह्येतां कुर्यान्सामायिकोद्यतः ।
आद्यं षट्कर्मणां मध्ये प्रतिक्रमणकर्मकम् ॥१७॥

सामायिक करनेके लिये उद्यत पुरुष उपर्युक्त श्लोकोंको पढ़ता हुआ षट्कर्मोंके नीच पहले प्रतिक्रमण नामक कर्म को करे ॥१७॥

●

---

१. अनुष्टुप् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२]

प्रत्याख्यानकर्म

[1]प्रमादतो ये बहवोऽपराधा
हिंसाभिमुख्या विहिता मयैते ।
ते त्वत्प्रसादाद्विफला भवन्तु
भवन्तु दुःखस्य यतो विनाशाः ॥१८॥

हे भगवन् ! प्रमादसे मैंने जो ये हिंसा आदि बहुतसे अपराध किये हैं वे आपके प्रसादसे मिथ्या हों, जिससे दुःखोंका नाश हो सके ॥१८॥

पापाभिलिप्तेन ह्रियोज्झितेन
दयाव्यतीतेन महाशठेन ।
हीनेन बुद्धया विहितानि यानि
कृत्यानि हा हन्त मया प्रमादात् ॥१९॥
संवेगवातज्वलितेन तापा-
नलेन तान्यद्य निहन्तुमीहे ।
निन्दामि नित्यं मनसा विरुद्ध-
मात्मस्वभावं बहुशो विभो हे ॥२०॥ (युग्मम्)

हे नाथ ! हाय-हाय, पापसे लिप्त, लज्जासे रहित, दयासे शून्य, महामूर्ख और बुद्धिसे हीन मैंने प्रमादसे जो-जो पाप किये हैं आज संवेगरूपी वायुसे प्रज्वलित पश्चात्तापरूपी अग्निसे

---

१. इन्द्रवज्रा, उपजाति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें नष्ट करनेकी चेष्टा करता हूँ। हे भगवन्! मैं अपने उस विरुद्ध स्वभावकी—विभाव भावकी हृदयसे नित्य निन्दा करता हूँ ॥१९-२०॥

सुदुर्लभं मर्त्यभवं पवित्रं
गोत्रं च धर्मं च महापवित्रम्।
लब्ध्वापि हा मूढतमेन मान्य!
जीवा वाराका निहता मयैते ॥२१॥

हे मान्य! अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यभव, पवित्र गोत्र और महा-पवित्र धर्मको पाकर भी मुझ महामूर्खने खेद है कि इन बेचारे प्राणियोंका घात किया है ॥२१॥

भूत्वेन्द्रियालम्पटमानसेना-
ज्ञेनेव नूनं निहताः समन्तात्।
एकेन्द्रियाद्या भवतः प्रसादात्
क्षान्तो भवेदद्य स मेऽपराधः ॥२२॥

निश्चित ही मैंने इन्द्रियोंमें लम्पट चित्त होकर अज्ञानीकी तरह सब ओर इन एकेन्द्रिय आदि जीवोंका विघात किया है। हे भगवन्! आज आपके प्रसादसे मेरा वह अपराध क्षमा हो ॥२२॥

आलोचनायां कुटिलाश्च दोषाः
कृता मया ये विपुलाश्च भीमाः।
भवन्तु ते नाथ भवत्कृपाभि-
र्मृषा वृषाराधितपादपद्म! ॥२३॥

हे इन्द्रवन्दित चरण! जिनेन्द्र! मैंने आलोचनामें जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुटिल, भयंकर एवं बहुत भारी दोष किये हैं वे सब आपकी कृपासे मिथ्या हों ॥२३॥

[1]एवं भूयो भूयो निन्दित्त्वामानमुग्रकर्माढ्यम् ।
साधुः संविदधीत प्रत्याख्यानाभिधं कर्म ॥२४॥

इस प्रकार तीव्र कर्मोंसे युक्त अपने आपकी बार-बार निन्दा कर साधुको प्रत्याख्यान नामका दूसरा कर्म करना चाहिये ॥२४॥

[३]

सामायिकं कर्म

[2]जीवे जीवे सन्ति मे साम्यभावाः
सर्वे जीवाः सन्तु मे साम्ययुक्ताः ।
आर्तं रौद्रं ध्यानयुग्मं विहाय
कुर्वे सम्यग्भावनां साम्यरूपाम् ॥२५॥

मेरा प्रत्येक जीवपर साम्यभाव है और सब जीव मुझपर साम्यभावसे युक्त होंवें । मैं आर्त्त और रौद्र इन दोनों कुध्यानों को छोड़कर अच्छी तरह साम्यभावना करता हूँ ॥२५॥

---

१. आर्याच्छन्दः ।

२. शालिनीच्छन्दः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथ्वी तोयं वह्निवायू च वृक्षो
युग्माक्षाद्या सन्ति ये जीवभेदाः ।
ते मे सर्वे क्षान्तियुक्ता भवन्तु
क्षान्त्या तुल्यं नास्ति रत्नं यदत्र ॥२६॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और द्वीन्द्रियादिक जो जीवोंके भेद हैं वे सब मुझपर क्षमासे युक्त हों; क्योंकि क्षमाके समान यहाँ रत्न नहीं हैं ॥२६॥

दुःखे सौख्ये बन्धुवर्गे रिपौ वा
स्वर्णे तार्णे वा गृहे प्रेतगेहे ।
मृत्यूत्पत्त्योर्वा समन्ताज्जिनेन्दो !
मध्यस्थं मे मानसं साम्प्रतं स्यात् ॥२७॥

हे जिनचन्द्र ! दुःखमें, सुखमें बन्धुसमूहमें, शत्रुमें, सुवर्णमें घासमें, घरमें श्मशानमें और मृत्यु तथा जन्ममें इस समय मेरा मन मध्यस्थ हो—राग-द्वेषसे रहित हो ॥२७॥

माता तातः पुत्रमित्राणि बन्धु-
र्भार्या श्यालः स्वामिनः सेवकाद्याः ।
सर्वे भिन्नाश्चिच्चमत्कारमात्रा-
दस्मद्रूपाच्चिच्चमत्कारशून्या ॥२८॥

माता, पिता, पुत्र, मित्र, भाई, स्त्री, साला, स्वामी और सेवक आदि सभी चैतन्यके चमत्कारसे शून्य हैं—इन सबके शरीर पौद्गलिक हैं, अतः चैतन्यचमत्कारमात्र हमारे आत्मस्वरूपसे भिन्न हैं ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहध्वान्तेनावृतोद्बोधचक्षुः
स्वात्माकारं तेन पश्यामि सम्यक् ॥२९॥

अब तक मेरा ज्ञानरूपी नेत्र मोहरूपी अन्धकारसे आच्छादित रहा, इसलिये मैंने कभी स्वात्मस्वरूपको नहीं देख पाया। आज मेरे ज्ञानज्योति प्रकट हुई है इसलिये मैं स्वात्मस्वरूपको अच्छी तरह देख रहा हूँ—उसका अनुभव कर रहा हूँ ॥२९॥

[1]एवं साम्यसुधाभरतृप्तस्वान्तः समन्ततः साधुः ।
सामायिकं तृतीयं कुर्यात्सत्कर्म सन्मान्यम् ॥३०॥

इस प्रकार साम्यभावरूप अमृतके समूहसे संतुष्ट चित्त होकर साधु सत्पुरुषोंके द्वारा माननीय तीसरा सामायिक कर्म करे ॥३०॥

●

[४]

स्तुतिकर्म

[2]यद्गर्भस्य महोत्सवे सुरचयैराकाशसंपातितै—
र्नानावर्णधरैर्विचित्रमणिभिः संछादितं भूतलम् ।
शुभ्रभद्रपधरैस्तदीयसुगुणै रेजे यथा लाञ्छितं
तं वन्दे वृषभं वृषाञ्चितपदं भक्त्या सदा सौख्यदम् ॥३१॥

जिनके गर्भकल्याणकके समय देवसमूहके द्वारा आकाशसे बरसाये हुए रङ्ग-बिरङ्गे नाना मणियोंसे आच्छादित पृथिवीतल

१. आर्याच्छन्दः । २. शार्दूलविक्रीडितछन्दः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा सुशोभित होरहा था मानों उन्हींके शोभायमान गुणोंसे युक्त हो, इन्द्रके द्वारा पूजित चरणोंके धारक एवं सदा वास्तविक सुख प्रदान करने वाले उन वृषभनाथ भगवान्‌को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥३१॥

प्रोत्तुङ्गे गिरिराजरम्यशिखरे क्षीरोदधेराहृतै—
श्चञ्चच्चन्द्रकलाकलापतुलितैरम्भोभिरानन्दिताः ।
जातं यं मुदिताः सुरा रतिधराः संसिक्तवन्तः स्वयं
तं वन्दे ह्यजितेश्वरं जिनवरं सत्कीर्तिराकापतिम् ॥३२॥

आनन्दसे युक्त एवं प्रीतिको धारण करनेवाले देवोंने उत्पन्न होते ही जिनका क्षीरसागरसे लाये हुए चन्द्रमाकी कलाओंके समूहकी तुलना करने वाले जलसे मेरुपर्वतके उच्चतम शिखर पर स्वयं अभिषेक किया था उन कीर्त्तिरूप पूर्णचन्द्रसे युक्त अजित जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३२॥

नो नित्यं जगतीतले किमपि हा हा विद्यते कुत्रचित्
सर्वं कालकरालकण्ठकलितं सर्वत्र संदृश्यते ।
इत्थं भोगशरीरशून्यहृदयो यः काननेष्वातपत्
तं वन्दे खलु शंभवं भवहरं सत्सौख्यसम्पत्करम् ॥३३॥

हाय-हाय, इस पृथिवीतल पर कहींपर कोई भी वस्तु नित्य नहीं है, सब जगह सब पदार्थ कालके भयंकर कण्ठसे निगलित दिखाई देते हैं.....इस तरह भोग और शरीरसे विरक्त चित्त होकर जिन्होंने वनमें तप किया उन जन्ममरणरूप संसारको हरनेवाले एवं समीचीन सुखरूपी सम्पत्तिको करनेवाले शंभवनाथ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्य ज्ञानदिवाकरेण दलितं ध्वान्तं ततं सर्वतो
नो लेभे वसुधातले क्वचिदपि स्थानं भ्रमत्सन्ततम्
लोकालोकपदार्थबोधनकरं सद्देशनातत्परं
तं वन्दे ह्यभिनन्दनं जनचयानन्दस्य संवर्धनम् ॥३४॥

पृथिवी तलपर सब ओर व्याप्त अज्ञानरूपी अन्धकार जिनके ज्ञानरूपी सूर्यसे खण्डित होकर कहीं भी स्थान प्राप्त नहीं कर सका, निरन्तर इधर-उधर घूमता ही रहा, लोक और अलोकके पदार्थोंका ज्ञान कराने वाले, सदुपदेश देनेमें तत्पर एवं जन-समूहके आनन्दको बढ़ाने वाले उन अभिनन्दननाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३४॥

शुक्लध्यानकृपाणखण्डितरिपुः स्वाधीनतां प्राप्नुवत्
स्वच्छाकाशनिकाशचेतनगुणञ्चासाद्य यः स्वात्मना ।
लेभेऽनन्तमनश्वरं सुखवरं स्वात्मोद्भवं स्वात्मनि
तं वन्दे सुमतिं सदा शुभमतिं कल्याणमालाश्रितम् ॥३५॥

शुक्लध्यानरूपी कृपाणसे कर्मरूपी शत्रुओंको नष्टकर स्वाधीनताको प्राप्त करते हुए जिन्होंने स्वच्छ आकाशके समान निर्मल चैतन्य गुणको प्राप्तकर अपने आपमें अपने आपके द्वारा उत्पन्न अनन्त अविनाशी उत्कृष्ट सुखको प्राप्त किया था, सुबुद्धिसे युक्त एवं कल्याणोंकी परम्परासे सेवित उन सुमतिनाथ भगवान्को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्कीर्त्या धवलीकृते धवलया लोके सलोको हरिः
पायोधिं पयसां हरो हरगिरिं हंसश्च हंसीं तथा ।
शक्रः शक्रकरेणुकं मृगयते राहुश्च राहुद्विषं
तं वन्दे कमलापतिं शिवपतिं पद्मप्रभं सत्प्रभम् ॥३६॥

जिनकी सफ़ेद कीर्तिके द्वारा समस्त संसारके सफ़ेद हो जाने पर जितनी सफ़ेद वस्तुएँ थी वे सब उस सफेदीमें अन्तर्हित हो गई, अतः लोकसहित हरि क्षीरसागरको, महादेव कैलासको, हंस हंसीको, इन्द्र ऐरावत हाथीको और राहु चन्द्रमाको खोजने लगा, लक्ष्मीपति, मुक्तिपति और समीचीन प्रभाके धारक उन पद्मप्रभ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३६॥

लोकानन्दपयोधिवर्धनपरो योऽपूर्वताराधिपो
मिथ्याबोधनिशाविनाशनकरो यो वासराधीशिता ।
संसाराब्धिनिमग्नजन्तुतरणिर्यो ज्ञानवाराकर-
स्तं वन्दे भवपाशनाशनकरं श्रीमत्सुपार्श्वं प्रभुम् ॥३७॥

जो मनुष्योंके हर्षरूपी समुद्रको बढ़ानेमें तत्पर अपूर्व चन्द्रमा थे, जो मिथ्याज्ञानरूपी रात्रिको नष्ट करनेके लिये सूर्य थे, जो संसाररूपी समुद्रमें निमग्न प्राणियोंके लिये जहाज थे, और जो ज्ञानके सागर थे उन संसाररूपी पाशको नष्ट करनेवाले श्रीमान् सुपार्श्व जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रक्षीरपयोधिमन्थनकरो योऽमन्थरो मन्दरः
सद्वृत्तादिसुरत्नपोषणपरो यो रोहणो भूधरः ।
यो लोकव्रजपापतापहरणे साम्भाः सदम्भोधर—
स्तं वन्दे किल चन्द्रसन्निभरुचिं चन्द्रप्रभं भास्वरम् ॥३८॥

जो शास्त्ररूपी क्षीरसमुद्रको मथनेवाले विशाल मन्दरगिरि थे, जो सदाचार आदि रत्नोंके पोषण करनेमें तत्पर रोहणगिरि थे, और जो जनसमूहके पापसम्बन्धी संतापको हरनेके लिये सजल मेघ थे, चन्द्रमाके समान कान्तिके धारक उन देदीप्यमान चन्द्रप्रभ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३८॥

सत्कारुण्यमहोदधिं गुणनिधिं सत्प्रीतिपाथोनिधिं
सद्बोधाहिमरश्मिलोकितजगत्काष्ठावधिं सद्विधिम् ।
पादाब्जानतदेवराजशिरसं सत्कीर्तिमन्तं प्रभुं
वन्देऽहं विपदन्तकारकममुं श्रीपुष्पदन्तं जिनम् ॥३९॥

जो समीचीन दयाके महासागर थे, गुणोंके भाण्डार थे, उत्तम प्रीतिके समुद्र थे, जिन्होंने सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यके द्वारा जगत्‌की सीमाको प्रकाशित कर दिया था, जो उत्तम भाग्यसे युक्त थे, जिनके चरणोंमें इन्द्रका मस्तक झुका करता था, जो उत्तम यशसे सहित थे तथा दुःखोंका अन्त करने वाले थे उन पुष्पदन्त जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३९॥

यस्य ज्ञानदिवेन्द्रदिव्यविपुलालोकेऽखिलालोकने
नानाशैलशिखामणिः सुरमणेः क्रीडाकदम्बोच्छ्रितः ।
आक्रान्तत्रिजगत्तलोऽचलपतिर्मेरुः स कीटायते
वन्दे तं जिनशीतलं शुभतमं भव्यात्मनां सौख्यदम् ॥४०॥

समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले जिनके केवलज्ञान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपी सूर्यके दिव्य एवं विशाल प्रकाशमें नाना पर्वतोंका शिरोमणि और इन्द्रकी क्रीड़ाओंसे उन्नत, तीनों जगत्‌को व्याप्त करने वाला वह पर्वतराज सुमेरु कीड़ाके समान जान पड़ता है उन अतिशय शुभ और भव्यजीवोंको सुख देने वाले शीतलजिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

येनामन्दकृपाभरेण नितरां पारं भवाब्धेः परं
तीव्रांहःपरिषन्निमग्नमनसः संप्रापिताः पूरुषाः ।
स त्वं भो करुणासुधाजलनिधे ! वात्सल्यपाथोनिधे !
हे श्रेयन् ! भवकर्दमे निपतितं किं मां सदोपेक्षसे ॥४१॥

जिन्होंने तीव्र पापरूपी कीचड़में फँसे हुए पुरुषोंको विशाल दयाके समूहसे निकाल कर संसार सागरके उस पार भेज दिया, जो दयारूपी अमृतके सागर हैं और स्नेहके समुद्र हैं ऐसे हे श्रेयान्स जिनेन्द्र ! संसाररूपी कीचड़में पड़े हुए मेरी आप सदा उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? मुझे भी संसाररूपी कीचड़से पार करो ॥४१॥

कामस्त्रीमुखचारुपत्रनिचयप्रोद्दीप्तदावानलं
बुद्धिश्रीसत्कीर्तिकान्तिविलत्सद्रत्नरत्नालयम् ।
लोकानन्दथुसागरोच्छ्रितिकरं राकानिशावल्लभं
वन्देऽहं वसुपूज्यजं जिनपतिं मोक्षार्गलोद्घाटनम् ॥४२॥

जो कामस्त्रीके मुखपर सुशोभित पत्रावलिको नष्ट करनेके लिये प्रचण्ड दावानल थे, जो बुद्धि, लक्ष्मी, कीर्त्ति और कान्तिरूपी सुशोभित रत्नोंके लिये रत्नाकर थे, जो मनुष्योंके हर्षरूपी सागरको बढ़ानेवाले पूर्णचन्द्र थे तथा जो मोक्ष-महलके आगलको खोलनेवाले थे उन वासुपूज्य जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षीराम्भोनिधिफेनपुञ्जविलसद्यत्कीर्तिसंघट्टतो
राहुर्नीलगिरिः पयोदसहितं खं नीलनीरेरुहम् ।
भृङ्गा मत्तमतङ्गजाश्च जगतो लुप्ता बभूवुस्तरां
तं वन्दे विमलं मलोज्झिततमं श्रीतीर्थनाथाधिपम् ॥४३॥

क्षीरसमुद्रके फेनके समान शोभायमान जिनकी कीर्तिके सम्बन्धसे राहु, नीलगिरि, मेघसहित आकाश, नीलकमल, भ्रमर और मदोन्मत्त हाथी—ये सभी काले पदार्थ संसारसे अत्यन्त लुप्त हो गये थे तथा जो अत्यन्त निर्मल थे उन विमलनाथ तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४३॥

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तसुतपःक्षान्त्यादयो यद्गुणा
अन्तं नो ह्युपयान्ति देवगुरुणा संवर्ण्यमानाश्चिरम् ।
श्रीमन्तं सुरराजपूजितपदं कल्याणमालास्पदं
वन्देऽनन्तजिनेश्वरं भवहरं तं कीर्तिसम्पद्धरम् ॥४४॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप और क्षमा आदि जिनके गुण बृहस्पतिके द्वारा चिरकाल तक वर्णित होने पर भी अन्तको प्राप्त नहीं होते, जिनके चरण इन्द्रके द्वारा पूजितहै, जो अनेक कल्याणोंके स्थान हैं, संसारको हरने वाले हैं, एवं कीर्त्तिरूपी सम्पत्तिको धारण करने वाले हैं उन श्रीमान् अनन्त जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४४॥

यः सज्ज्ञानविभूषितः सुरचया अर्चन्ति यं सन्ततं
ध्वस्तो येन मनोभवो बुधजनो यस्मै सदा तिष्ठते ।
यस्मान्मोहपरम्परा विगलिता यस्यास्ति दासो जगद्
यस्मान् लीनतमो विकल्पनिचयस्त धर्मनाथं भजे ॥४५॥

जो सम्यग्ज्ञानसे विभूषित हैं, देव समूह जिनकी निरन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा करते हैं, जिन्होंने कामको नष्ट कर दिया है। विद्वज्जन सदा जिनकी प्रतीक्षा करते हैं, जिनसे मोहकी परम्परा नष्ट हो गई है, संसार जिनका दास है और विकल्पोंका समूह जिनमें अत्यन्त लीन हो जाता है मैं उन धर्मनाथकी आराधना करता हूँ ॥४५॥

चित्तक्षोभकरेण येन नितरां चक्रेण संतापिता
योद्धारः प्रतिपक्षिपक्षसहिता राज्यस्य काले सदा ।
ध्यानाह्वेन भयङ्करेण सुतरां चक्रेण कामादयो
वीराश्चापि हताः समाधिसमये शान्तिः स शान्तिं क्रियात् ॥४६॥

जिन्होंने राज्यके समय विरोधी पक्षसे सहित योद्धाओंके चित्तको क्षुभित करनेवाले चक्ररत्नसे सदा संतापित किया और समाधिके समय ध्यान नामक भयंकर चक्रके द्वारा काम आदि वीरोंको नष्ट किया वे शान्तिनाथ जिनेन्द्र शान्ति करें ॥४६॥

यस्य क्षान्तिदयाभिधानयमुनाभागीरथीसङ्गमे
स्नात्वा यान्ति जनाः शरीरनिचयं त्यक्त्वा शिवं सुन्दरम् ।
कुन्थ्वाद्या अपि जन्तवो निजकृपाभारेण संरक्षिता
येनानन्दमृतं भजामि सततं तं कुन्थुनाथं जिनम् ॥४७॥

जिनकी क्षमा और दया नामक यमुना और गङ्गाके संगममें स्नान कर लोग शरीरके समूहका परित्याग कर सुन्दर मोक्षको प्राप्त होते हैं तथा जिन्होंने अपनी दयाके समूहसे कुन्थु आदि क्षुद्र जीवोंकी भी रक्षा की थी, आत्मीय आनन्दको धारण करने वाले उन कुन्थुनाथ जिनेन्द्रकी मैं सदा सेवा करता हूँ ॥४७॥

शुक्लध्यानकृपाणमत्र सुतरामादाय येन क्षितौ
मोहाद्या रिपवो हता वसुमिता लोकाहिता विग्रहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ता मुक्तिवधूर्वधूत्तमाशिरोभूता च येन स्वयं
वन्देऽरं भगवन्तमुत्तममतिं तीर्थेश्वरं चेतसा ॥४८॥

जिन्होंने इस पृथिवी पर युद्धमें शुक्लध्यान रूपी तलवार लेकर मोह आदि शत्रुओंको मार गिराया तथा समस्त स्त्रियोंमें प्रधान मुक्तिरूपी स्त्रीको जिन्होंने स्वयं प्राप्त किया उन उत्तम बुद्धिके धारक अरनाथ तीर्थंकरको मैं हृदयसे नमस्कार करता हूँ ॥४८॥

यस्य ज्ञानमहोदधौ जगदिदं बिन्दूपमं विद्यते
यद्गाम्भीर्यगुणस्य हन्त पुरतः सिन्धुः स तुच्छोऽभवत् ।
यद्धैर्येण तिरस्कृतो रतिपतिर्जाने न कुत्र च्युत-
स्तं वन्दे मुनिनाथमल्लिजिनपं श्रीतीर्थनाथाधिपम् ॥४९॥

जिनके ज्ञानरूपी महासागरमें यह जगत् बिन्दुके समान जान पड़ता है, जिनके गाम्भीर्यगुणके आगे वह समुद्र तुच्छ हो गया, और जिनके धैर्यसे तिरस्कृत हुआ काम न जाने कहाँ छूट गया उन मल्लिनाथ जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४९॥

चञ्चच्चन्द्रमरीचिसन्निभरुचिर्विद्वन्मरालाश्रिता
यस्योद्बोधमहोर्मिमाल्यमिलिता सत्प्रीतिमन्दाकिनी ।
लोकातापततिं सदा क्षितितले लोपं नयन्ती बभौ
तं वन्दे मुनिराजपूतजिपदं श्रीसुव्रतम् सुव्रतम् ॥५०॥

चमकते हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिसे युक्त, विद्वान्‌रूपी हंसोंसे सेवित एवं उत्कृष्ट ज्ञानरूपी बड़ी-बड़ी लहरोंकी संततिसे सहित जिनकी प्रीतिरूपी गङ्गा मनुष्योंके संताप समूहको नष्ट करती हुई पृथिवीपर सदा सुशोभित रहती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी, बड़े-बड़े मुनि जिनके चरणोंकी पूजा करते थे तथा जो उत्तम व्रतोंसे सहित थे उन मुनिसुव्रत जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५०॥

यद्वक्त्रप्रभया पराजिततमो राकाशशी प्रत्यहं
काश्यं याति शरीरभाभरजितं कञ्जं च भास्वद्दलम् ।
लज्जातापचयापहारमनसा मग्नं जले नित्यश—
स्तं वन्दे नमिनाथमुन्नतमतिं श्रीतीर्थनाथेश्वरम् ॥५१॥

जिनके मुखकी प्रभासे अत्यन्त पराजित हुआ पूर्णिमाका चन्द्र प्रतिदिन क्षीणताको प्राप्त होता रहता है और जिनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जीता हुआ शोभित कलिकाओं वाला कमल लज्जाजन्य संतापको दूर करनेकी इच्छासे निरन्तर पानीमें डूबा रहता है उत्तम बुद्धिके धारक उन नमिनाथ भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५१॥

कष्टं भो ! क्षणभङ्गुरं लघुतरं लघुतरं दुःखान्तमन्तात्मकं
राज्यं लब्धुमहो न हन्त कुरुते मायां न कां कां जनः ।
इत्थं येन विचारितं मुररिपोर्द्रव्दृष्टा महामायिता-
मात्तं येन तपो विरज्य भवतो नेमिं नमामो हि तम् ॥५२॥

मुरारिकी महामाया देखकर जिन्होंने ऐसा विचार किया था कि बड़े दुःखकी बात है कि इस क्षणभङ्गुर, अत्यन्त तुच्छ दुःखदायक एवं नश्वर राज्यको प्राप्त करनेके लिये मनुष्य क्या-क्या माया नहीं करता है। इस विचारके अनन्तर जिन्होंने संसारसे विरक्त होकर तप धारण किया उन नेमिनाथ भगवान् को हम नमस्कार करते हैं ॥५२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येन स्थैर्यगुणाणुना रिपुकृता सोढा विपत्तिर्वने
येन ध्यानहुताशने रतिपतिर्नीतः समिद्भूपताम् ।
यद्वाण्या शुभया जितो मधुरिमा पीयूषपिण्डस्य तं
वन्दे स्वाङ्गविभाविभासितदिशापार्श्वं हि पार्श्वं भजे ॥५३॥

जिन्होंने अपने धैर्यगुणके अणुमात्रसे वनमें शत्रुके द्वारा की हुई विपत्तिको सहन किया, जिन्होंने कामदेवको ध्यानरूपी अग्नि का ईधन बनाया, जिनकी शुभ वाणीने अमृतपिण्डकी मधुरिमा-को जीत लिया और जिन्होंने अपने शरीरकी प्रभासे दिशाओंके तटको सुशोभित कर दिया उन पार्श्वनाथ भगवान्‌की मैं सेवा करता हूँ ॥५३॥

दृष्ट्वा येन भवस्य दुःखसरणिं राज्यादिकं प्रोज्झितं
बाल्ये चैव पराजितो हरिसुतो येन क्षितौ तेजसा ।
यं ध्यायन्ति मनीषिणः प्रतिदिनं मोक्षस्य संप्राप्तये
तं सिद्धार्थनरेन्द्रनन्दनमहं भक्त्या भजे सन्ततम् ॥५४॥

जिन्होंने संसारकी दुःखावलीको देखकर राज्य आदिको छोड़ दिया, जिन्होंने बाल्य अवस्थामें ही पृथिवीपर अपने तेज-से कामको पराजित कर दिया और मोक्षकी प्राप्तिके लिये विद्वज्जन प्रतिदिन जिनका ध्यान करते हैं उन सिद्धार्थ राजा-के पुत्र—भगवान् महावीर स्वामीकी मैं निरन्तर सेवा करता हूँ ॥५४॥

[1]इत्थं श्लोककलापं निपठन् साधुः समाहितः सम्यक् ।
विदधीत कर्म तुर्यं बुधजनवन्द्यं स्तुतिख्यानम् ॥५५॥

---

१. आर्याछन्दः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंके समूहको पढ़ता हुआ साधु एकाग्रचित्त होकर विद्वज्जनोंके द्वारा वन्दनीय स्तुति नामक चौथा कर्म करे ॥५५॥

[५]

वन्दनाकर्म

[1]हे वीर ! हे गुणनिधे ! त्रिशलातनूज !
मज्जन्तमत्र भववारिनिधौ दयालो !
दत्त्वावलम्बनमतः कुरु मां विदूरं
मुक्त्वा भवन्तमिह कं शरणं व्रजामि ॥५६॥

हे वीर ! हे गुणोंके भाण्डार ! हे त्रिशला माताके पुत्र हे दयालो ! इस संसार सागरमें डूबते हुए मेरे लिये सहारा देकर आप इससे दूर कीजिये । आपको छोड़कर यहाँ मैं और किसकी शरणको प्राप्त होऊँ ? ॥५६॥

पापप्रचण्डवनवह्निशमे निदीष्णं
सद्घातकावलितृपापरिहारदक्षम् ।
सन्मानसस्य परिवृद्धिकरं समन्तात्
तं वीरवारिदमहं विनमामि सम्यक् ॥५७॥

जो पापरूपी प्रचण्ड दावानलके शान्त करनेमें निपुण हैं,

१. वसन्ततिलकाछन्दः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्पुरुष रूपी चातकसमूहकी तृषाके दूर करनेमें समर्थ हैं, तथा सत्पुषोंके सन्मानरूपी धान्यकी सब ओरसे वृद्धि करनेवाले हैं ऐसे भगवान् महावीररूपी मेघको मैं अच्छी तरह नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

आनन्दमन्दिरममन्दमनिन्द्यमाद्यं
वृन्दारुवृन्दपरिवन्द्यपदारविन्दम् ।
कुन्दातिसुन्दरयशोविजितेन्दुबिम्बं
वन्दे मुदा जिनपतिं वरवीरनाथम् ॥५८॥

जो आनन्दके मन्दिर हैं, प्रबुद्ध हैं, प्रशंस्य हैं, श्रेष्ठ हैं, वन्दना करने वालोंके समूहसे जिनके चरणारविन्द वन्दनीय हैं, तथा कुन्दकुसुमसे भी अधिक सुन्दर यशके द्वारा जिन्होंने चन्द्रमाके बिम्बको जीत लिया है उन भगवान् महावीर जिनेन्द्र की मैं बड़े हर्षसे वन्दना करता हूँ ॥५८॥

गन्धर्वगीतगुणगौरवशोभमानं
सद्बोधदिव्यमहसा महता सुयुक्तम् ।
वन्दे जिनं जितभवं खलु वर्धमानं
संवर्धमानमहिमानमुदारमोदात् ॥५९॥

जो गन्धर्व देवोंके द्वारा गाये हुए गुणोंके गौरवसे शोभमान हैं, जो बहुत भारी सम्यग्ज्ञानरूपी दिव्य तेजसे युक्त है, जिन्होंने संसारको जीत लिया है तथा जिनकी महिमा निरन्तर बढ़ रही हैं उन वर्धमान जिनेन्द्रकी मैं बड़े हर्षसे वन्दना करता हूँ ॥५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीहारहारहरहाससहासकाश-
संकाशकीर्तिमतिवीरमुदारबोधम्
देवेन्द्रवृन्दपरिवन्दितपादपद्मं
वन्दे विभुं जिनपतिं त्रिशलातनूजम् ॥६०॥

जो वर्फ, हार, शिवजीके अट्टहास, तथा फूले हुए काशके फूलके समान निर्मल कीर्तिके धारक हैं, जिनका ज्ञान अतिशय महान् है, तथा इन्द्रोंके समूह जिनके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं उन भगवान् महावीर जिनेन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ ॥६०॥

[1]इति विनम्य महामुनिसन्मतिं
जिनपतिं सरलाकृतिमन्तिमम्
सुविदधातु यतिर्वरवन्दना
भिधमिदं कृति कर्म च पञ्चमम् ॥६१॥

इस प्रकार महामुनि, सुबुद्धिसे युक्त तथा सरल—निश्चल आकृतिके धारक अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर भगवान्को नमस्कार कर साधु वन्दना नामक पञ्चम कर्मको करे ॥६१॥

१. द्रुतविलम्बितम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[६]

कायोत्सर्गकर्म

शुक्रशोणितसमूहसंभवः श्लेष्ममूत्रमलपुञ्जपञ्जितः
नश्वरो विविधरोगसंगतः काय एव बहुदुःखद सताम् ॥६२॥

रज और वीर्यके समूहसे जिसकी उत्पत्ति हुई है, जो खकार, मूत्र, तथा मलके समूहसे युक्त है, विनश्वर है और नाना रोगोंसे सहित है, ऐसा शरीर ही सत्पुरुषोंको अनेक दुःखोंका देने वाला है ॥६२॥

कायबन्धनगृहे समन्ततो वेष्टिते करणरक्षकव्रजैः ।
हन्त हन्त बहुदुःखसंचयं याति जीव इह सन्ततं भ्रमन्॥६३॥

हाय-हाय, इस संसारमें निरन्तर भ्रमण करता हुआ यह जीव इन्द्रियसमूहरूपी रक्षकोंके समूहसे परिवेष्टित शरीररूपी कारागारमें बहुत भारी दुःखोंके समूहको प्राप्त हो रहा है ॥६३॥

पोषणे न वपुषः सुखं भवेच्छोषणे च नितरां भवेत्तु तत् ।
तेन कायपरिहाणिरेव हि श्रेयसे बुधजनाभिसंमता ॥६४॥

शरीके पोषणमें सुख नहीं है किन्तु शोषणमें अत्यन्त सुख है इसलिये शरीरसे ममत्वभाव छोड़ना ही विद्वज्जनोंको इष्ट है ॥६४॥

इन्द्रकालधननाथपाशिनां दिक्षु यास्ति जिनमन्दिरावलिः ।
तां नमामि वरभक्तिभावतः पापपुञ्जपरिहारहेतवे ॥६५॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें जो जिनमन्दिरोंका

---

१. रथोद्धता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समूह है उसे मैं पापोंका समूह नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट भक्ति-भावसे नमस्कार करता हूँ ॥६५॥

आनते शिरसि पाणिकुड्मलं संनिधाय विदधे शिरोनतिम् ।
कायचित्तवचसां विशुद्धये तां करोमि सकलक्रियाततिम् ॥६६॥

मैं नम्रीभूत शिरपर जुड़े हुए दोनों हाथ लगाकर शिरोनति करता हूँ और काय, मन, तथा वचनोंकी विशुद्धिके लिये उस समस्त कृति कर्मको करता हूँ ॥६६॥

सन्ति ये भुवनमध्यसंगताः कृत्रिमास्तदितरे जिनालयाः ।
तेषु याश्च जिननाथमूर्तयस्ता नमामि सकलाः कलोच्छ्रिताः॥६७॥

इस संसारमें जो कृत्रिम तथा आकृत्रिम जिनमन्दिर हैं तथा उनमें जो कलापूर्ण प्रतिमाएँ हैं मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ ॥६७॥

यो विदेहभुवि विद्यते सदा तीर्थनाथनिचयः सुपूजितः ।
ज्ञानसूर्यविदिताखिलावनिस्तं नमामि वसुकर्महानये ॥६८॥

विदेह क्षेत्रमें ज्ञानरूपी सूर्यके द्वारा समस्त पृथिवीको जानने वाले अतिशय पूजित जो तीर्थंकरोंका समूह निरन्तर विद्यमान रहता है आठ कर्मोंको नष्ट करने लिये मैं उसे नमस्कार करता हूँ ॥६८॥

यत्र तत्र खलु ये महर्षयः सन्ति संयमधरा यतीश्वराः ।
तान्नमामि हृदयेन सन्ततं प्राप्तये सकलसंयमावलेः ॥६९॥

जहाँ तहाँ संयमको धारण करने वाले जो मुनिराज हैं मैं सकल संयमकी प्राप्तिके लिये हृदयसे उन सबको नमस्कार करता हूँ ॥६९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नास्ति नास्ति भुवनत्रये क्वचित् साम्यभावसदृशं सुखप्रदम् ।
साम्यमेव विनिहन्ति वैरितां साम्यमेव विदधाति बन्धुताम् ।७०।

तीनों लोकोंमें साम्यभावके समान कहीं कोई दूसरी वस्तु सुखदायक नहीं हैं, साम्यभाव ही वैरभावको नष्ट करता है और साम्यभाव ही बन्धुताको करता है ॥७०॥

[1]पापं विलुम्पति नृणां मुदमादधाति
वैरं निहन्ति सकलं विदधाति मैत्रीम् ।
दुष्टेन्द्रियाश्वविजयं वितनोति सम्यक्
किं किं न सौख्यनिचयं विदधाति साम्यम् ॥७१॥

साम्यभाव मनुष्योंके पापको लुप्त करता है, हर्ष उत्पन्न करता है, सब प्रकारके वैरको नष्ट करता है, मित्रता करता है और इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़ोंपर अच्छी तरह विजय प्राप्त करता है, ठीक है साम्यभाव कौन-कौन-से सुखसमूहको नहीं करता है ? ॥७१॥

[2]एवं षष्ठं कर्म कृत्वा सुभक्त्या
कायोत्सर्गं सौख्यदं साधुसङ्घैः ।
आत्मध्यानालीनचेतोविकल्पैः
संध्यां संध्यां साध्यतां साम्यभावः ॥७२॥

इस प्रकार साधुसमूहको भक्तिपूर्वक सुखदायक कायोत्सर्गनामका छठवाँ कर्म करके मनके समस्त विकल्पोंको आत्म-

---

१. वसन्ततिलका ।

२. शालिनी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यानमें निमग्न करते हुए प्रत्येक संध्या—प्रातः, मध्याह्न और सायंकालके समय साम्यभाव करना चाहिये ॥७२॥

[1]पन्नालालकृतः सामायिकपाठः सुखप्रदः ।
भूयात्साधुमनोध्वान्तध्वंसने तिग्मदीधितिः ॥७३॥

पन्नालालके द्वारा किया हुआ यह सुखदायक सामायिक पाठ साधुओंके मनसम्बन्धी अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्य स्वरूप हो ॥७२॥

१. अनुष्टुप्छन्दः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिकपाठ भाषा

१. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्म मरण नित किये पापको ह्वै अधिकारी॥
कोटि भवांतर मांहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज, मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥१॥

हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूर माँहिं मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब॥२॥

क्रोध मान मद लोभ मोह माया वश प्रानी।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥
विना प्रयोजन एकेंद्रिय वि ति चउ पंचेंन्द्रिय।
आप प्रसादहिं मिटैं दोष जो लग्यो मोहिं जिय॥३॥

आपसमें इकठौर थापकरि जे दुःख दीने।
पेलि दिये पगतलैं दाबिकरि प्राण हरीने॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करूँ मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥४॥

अंजन आदि चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्म मांहिं विधि॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमाद वश होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादैं।
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधैं ॥६॥

मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महा शठ।
किये पाप अघ ढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥
निंदू हूँ तिन वारवार निज जियको गरहूँ।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूँ ॥७॥

दुर्लभ है नर जन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत संगति संजोग धर्म जिन श्रद्धा, धारी ॥
जिन वचनामृत धार समावतैं जिनवानी।
तौहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी ॥८॥

इंद्रिय लंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब ॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निंदूँ अब मन वच तोले ॥९॥

आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुम तैं जिन मेरे ॥
बारबार इस भाँति मोह-मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. तृतीय सामायिक कर्म

सब जीवनमें मेरे समता भाव जग्यो है।
सब जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र ध्यान छाँड़ि करिहूँ सामायिक।
संजम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक॥११॥

पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति।
पंचहिं थावर माँहिं तथा त्रस जीव वसैं जित॥
वे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रिय माँहि जीव सब।
तिन तैं क्षमा कराऊँ मुझपर क्षमा करो अब॥१२॥

इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिकका काल जितै यह भाव नवीनी॥१३॥

मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्‌यो गह॥१४॥

मैं अनादि जगजाल मांहि फँसि रूप न जान्यो।
एकेंद्रिय द्वै आदि जंतुको प्राण हरान्यो॥
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव-भवको अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. चतुर्थ स्तवन कर्म

नमौं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको ।
संभव भवदुख हरण करण अभिनन्द शर्मको ।।
सुमति सु-मति दातार तार भवसिंधु पार कर ।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ।।१६।।

श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर ।
श्रीचंदप्रभ चंद्रकांति सम देह कांतिधर ।।
पुष्पदंत दमि दोष कोष भविपोष रोषहर ।
शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषकर ।।१७।।

श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भव भयहन ।।
विमल विमलमति देन अंतगत हैं अनंत जिन ।
धर्म शर्म शिवकरण शांति जिन शांति विधायिन ।।१८।।

कुंथ कुंथु मुख जीवपाल अरनाथ जाल हर ।
मल्लि मल्ल सम मोहमल्ल मारन प्रचार धर ।।
मुनिसुव्रत व्रतकरन नमत सुरसंघहि नमि जिन ।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञानधन ।।१९।।

पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वसूं भवदुःख कर्मकृत ।।
या विधि मैं जिन संघरूप चउवीस संख्यधर ।।
स्तवूं नमूं हूँ वारवार वंदूँ शिव सुखकर ।।२०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. पंचम वंदना कर्म

वंदूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति।
वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूँ मन वच तन कृत ॥
त्रिशला तनुज महेश ईश विद्यापति वंदूँ।
वर्दौं नित प्रति कनक रूप तनु पाप निकंदूँ ॥२१॥

सिद्धारथ नृप नंद दुंद दुख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर करि जन्म जगत जिय आनँद कारन।
वर्ष वहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन ॥२२॥

सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्म मरण भय।
बाल ब्रह्म मय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भव सिंधु जीवघन।
आप बसे शिवमांहि ताति वंदौं मन वच तन ॥२३॥

जाके वंदन थकी दोष दुख दूरहिं जावै।
जाके वंदन थकी मुक्ति तिय सन्मुख आवै ॥
जाके वंदन थकी वंद्य होंवें सुरगनके।
ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूँ क्रमयुग तिनके ॥२४॥

सामायिक षटकम मांहि वंदन यह पंचम।
वंदौं वीर जिनेंद्र इंद्र शत वंद्य वंद्य मम ॥
जन्म मरन भय हरो करो अघशांति शांतिमय।
मैं अघकोष सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. छठा कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूँ अंतिम सुखदाई।
काय त्यजन में होय काय सबको दुखदाई ॥
पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं।
जिनगृह वदन करूं हरूं भव पाप तिमिर मैं ॥२६॥

शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूं मन वच मद हरिकैं।
तीन लोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम ॥
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं बन्दों जिम ॥२७॥

आठकोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानो।
चारि शतक पर असी एक जिनमंदिर जानो ॥
व्यंतर ज्योतिषि माँहिं संख्य रहिते जिन मंदिर।
ते सब वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥२८॥

सामायिक सम नाहिं और कोउ बैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री दायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥२९॥

जे भवि आतमकाज-करण उद्यमके धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग रोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाके

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. मेरी जीवन-गाथा भाग १ : तृतीय संस्करण
(वर्णीजी द्वारा स्वयं लिखित) ६–००

२. ,, ,, भाग २ ,, ,, ४–२५

३. वर्णी वाणी : भाग १ (द्वितीय संस्करण)
(वर्णीजीके आध्यात्मिक संदेशोंका संकलन) ३–५०

४. ,, भाग २ ,, ,, ,, ,, ४–००

५. ,, भाग ३ चतुर्थ संस्करण ,, ,, ५–००

६. ,, भाग ४ (वर्णीजीके अध्यात्मपूर्ण पत्रोंका संकलन) ३–५०

७. जैन साहित्यका इतिहास (पूर्वपीठिका) भाग १ :
पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री
(७५० पृष्ठोंमें लिखित जैन साहित्यका गवेषणापूर्ण अद्वितीय इतिहास-ग्रन्थ : पहली बार प्रकाशित) १०–००

८. जैन दर्शन (द्वितीय संस्करण) : डा० महेन्द्रकुमारजी जैन
(जैन दर्शनका सांगोपांग प्रामाणिक विवेचन) ७–००

९. पंचाध्यायी : मूल—पण्डित राजमल्लजी
हिन्दी रूपान्तर—पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री
(जैन तत्त्वज्ञानकी विवेचिका अद्वितीय मौलिक कृति) ९–००

१०. श्रावकधर्मप्रदीप : मूल—आचार्य कुन्थुसागर महाराज
हिन्दी-संस्कृत टीका—पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री
(श्रावकाचार-विषयक सरल और विशद रचना) ४–००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. तत्त्वार्थसूत्र : मूल—आचार्य गृद्धपिच्छ
हिन्दी-विवेचन—पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री
(जैन तत्त्वोंका प्रामाणिक और विशद निरूपण) ५–००

१२. द्रव्यसंग्रह-वचनिका : मूल—आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव
वचनिका—पं० जयचन्दजी छावड़ा
सम्पादन—प्राध्यापक दरबारीलाल कोठिया
(जैन तत्त्वज्ञानकी प्रतिपादिका मौलिक सरल रचना) २–५०

१३. अपभ्रंश-प्रकाश : लेखक—डा० देवेन्द्रकुमारजी जैन
(अपभ्रंश भाषा व साहित्यका विशद परिचय) ३–००

१४. मन्दिर-वेदीप्रतिष्ठा-कलशारोहण-विधि :
सम्पादन—पं० पन्नालालजी वसंत
(जैन प्रतिष्ठा-विधिका उपयोगी एवं प्रामाणिक संकलन) १–२५

१५. अनेकान्त और स्याद्वाद :
लेखक-प्राध्यापक उदयचन्द्रजी जैन ०–२५

मंत्री,
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला
१।१२८, मरावबाग-वसति, अस्सी, वाराणसी–५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

संरक्षक-सदस्योंकी नामावली

१. श्री पं० बसोरेलाल पन्नालालजी जैन, अकलतरा
१. मेसर्स सेठ भगवानदास शोभालालजी जैन, बीड़ी वाले, सागर
३. श्री सेठ मोहनलालजी सेठी, दुर्ग
४. ,, पं० बालचन्द्र सुरेशचन्द्रजी जैन, गल्लेके व्यापारी, नवापारा-राजिम
५. ,, रा० ब० सेठ राजकुमारसिंहजी, इन्दौर
६. ,, ला० प्रेमचन्द्रजी जैनावॉच, दिल्ली
७. ,, बा० जुगमन्दिरदासजी जैन, कलकत्ता
८. ,, ला० मोतीलालजी जैन, दिल्ली
१. ,, मोतीलालजी वडकुल, जबलपुर
१०. ,, स० सि० धन्यकुमारजी, कटनी
११. ,, बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता
१२. ,, बा० नृपेन्द्रकुमारजी जैन, जवाहर प्रेस, कलकत्ता
१३. ,, दि० जैन मारवाड़ी मन्दिर ट्रस्ट, इन्दौर
१४. ,, ला० रघुवरदयाल रत्नत्रयधारीजी जैन, दिल्ली
१५. ,, बा० महेशचन्द्रजी जैन, हस्तिनापुर
१६. ,, सिं० बदलीदास छोटेलालजी जैन, किराना मर्चेण्टस्, झाँसी
१७. ,, ला० प्रकाशचन्द्रजी जैन, पूसारोड, दिल्ली
१८. ,, विजयकुमारजी मलैया, दमोह
१९. ,, बा० श्यामलालजी पाण्डवीय, मुरार (ग्वालियर)
२०. ,, वैजनाथ सरावगी स्मृतिनिधि, कलकत्ता
२१. ,, सिं० हजारीलाल शिखरचन्द्रजी जैन, अमरपाटन
२२. ,, सिं० भागचन्द्रजी इटोरया, दमोह
२३. श्री सेठ बाबूलालजी बाँदा (उ० प्र०)
२४. ,, बा० नन्दलालजी जैन, कलकत्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५. ,, सेठ ब्रजलाल बारेलालजी जैन, चिरमिरी (सरगूजा)
२६. ,, बा० नेमकुमारजी जैन, आरा
२७, ,, सेठ मुन्नालाल भैयालालजी जैन, कपड़ेके व्यापारी, टीकमगढ़
२८. ,, सेठ दयाचंद बाबूलालजी (मैनवारवाले) टीकमगढ़
२९. ,, पं० खुन्नीलालजी जैन, टीकमगढ़
३०. ,, चतुर्भुज राजारामजी जैन, टीकमगढ़
३१. ,, पं० किशोरीलालजी जैन, शास्त्री, टीकमगढ़
३२. ,, सेठ ब्र० धर्मदासजी बजाज, टीकमगढ़
३३. ,, सेठ तुलसीरामजी जैन, शाहगढ़ (सागर)
३४. ,, सिं० दोलतराम बाबूलालजी, सोंरई (झाँसी)
३५. ,, मती धर्मपत्नी सेठ मल्थूरामजी जैन, मड़ावरा (झाँसी)
३६. ,, भगवानदासजी सतभैया, सागर
३७. ,, सेठ मल्थूरामजी जैन, सागर
३८. ,, मती सिंघैन चम्पाबाईजी मातेश्वरी सि० जीवनकुमारजी, सागर
३९. ,, सिं० रतनचन्द्र मोतीलालजी जैन, पाटन
४०. ,, सिं० अमीरचन्द्र देवचन्द्रजी जैन, पाटन
४१. ,, लाला फकीरचंदजी जैन, दिल्ली
४२. ,, पं०, बारेलालजी राजवैद्य, टीकमगढ़
४३. ,, मती वृजमाला जी जैन, बम्बई

स्थायी सदस्य

४४. ,, सि० श्रीनंदलालजी जैन, बीना (इटावा)
४५. ,, पं० रविचन्द्रजी जैन, प्रभात वर्तन-भंडार, दमोह

संरक्षक-सदस्य शुल्क सिर्फ १०१) है और उन्हें ग्रन्थमालाके प्रकाशित तथा भविष्यमें प्रकाशित होने वाले सभी ग्रन्थ भेंट दिये जाते हैं। अन्य महानुभाव भी संरक्षक-सदस्य बन कर सहयोग प्रदान करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

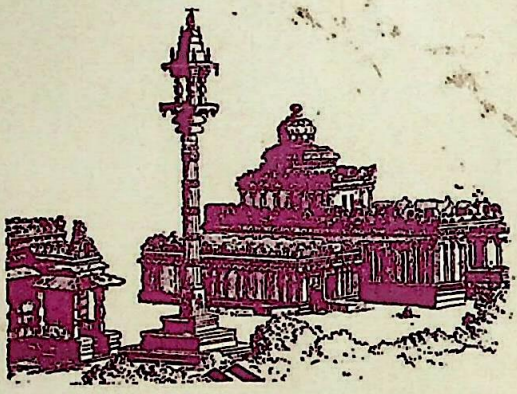

मुद्रक— महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi